सी देख पड़ती है! वह प्रफुल्लानन अब शुष्कवत् हो गया, कैसे चिकने केश थे अब उन की जटा बँध गई, हाय! इसे कौन प्रेमभाव से देखनेवाला है, कौन पूछेगा कि बेटी आओ खा लो, कौन शयन करने को कहेगा मेरे सोने की पुतली को अभी इतना कष्ट हुआ और मैं दूध दही खाकर इस अधम शरीर को पोषण करती हूं, सुन्दर गृह मे स्वच्छ शय्या पर सोती हूं, सैकड़ों दास दासी सेवा करते हैं शतश शची का सुख नित्य भोगती हूं! क्या इस पर भी मुझे जीना उचित है?

अश्वि०—माता! जब तुम सती का सब दुख जानतीही थीं तो उसे इतने दिन तक क्यों वहां रहने दिया?

प्रसू०—क्या करूं बेटी, शिव आने देता नहीं कई बेर तो सेवकों के द्वारा भिक्षुक की भांति अनेक प्रकार विनय किया तौ भी नहीं आने दिया! सब लोग कैलास में जाकर अपना सा मुंह ले फिर आते थे और मुझे कष्ट से बचाने के निमित्त सती का दुःख प्रकाश नहीं करते थे, मुझ से आकर कह देते थे कि तुमारी सती सुख से कालयापन कर रही है। परन्तु उन लोगों का उदासीन चित्त देख कर मुझे तनिक भी विश्वास नहीं होता था, यही सोचती थी कि

चाहे जो हो एक बेर स्वयम् कैलास में चल कर मैं अपने नेत्रों से देख आऊं ।

अखि०—यह तो अच्छा होता उधर ही से चन्द्रलोक भी देख आतीं ।

प्रसू०—बेटी ! यह कैसे हो सकता, पराधीन अभागिनी स्त्रीजाति को तो लोकाचार और कुलमान रख कर हृदय का फोड़ा फोड़ना पड़ता है! यदि दिखलाने के योग्य होता (छाती पर हाथ रख कर) तो इसको चीर कर तुम लोगों को दिखला देती कि सन्तान के निमित्त माता का हृदय कैसा सन्तप्त होता है, जब सन्तान होगा तब तुम लोग जानोगी कि माता की आत्मा कैसी होती है यदि उसकी शतांश ममता भी सन्तान को हो तो फिर इस त्रैलोक्य में किसी की माता दुःखिनी न होने पावे यदि ऐसा होता तो क्या सती ! तू इसी अवस्था में अपनी माता को इस प्रकार भूल जाती ? (सती का चिबुक पकड़ कर) भला बेटी! बाल्यावस्था में तो तू माता की पुतली थी अब क्यों पाषाणहृदय हो गई ? कितने लोग यही कहते थे कि वह स्वयम् आने की चेष्टा नहीं करती इसमें जामाता बिचारे का क्या दोष है ? भला आने वाली पुत्री को क्या जामाता कभी रोक सकता है ?

सती—माता ! यह कभी सम्भव है कि मैं तेरे गोद में आने की इच्छा न करूंगी ? नहीं माता ! यह बात क्या तेरे मन में बैठती है ? माता, मैं तो आने के लिये पागल हो गई; परन्तु क्या करूं ? तुम्हीं तो कहती हो, कि स्त्रीजाति पराधीन है--अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकती और करना उचित भी नहीं है। गृहस्थाश्रम में मन लगाना और सदा गुरुजन (सलज्ज और नम्रमुख होकर) के वश में रहना, यह सब तुम्हीं ने तो सिखलाया था। माता ! तेरे दर्शन के लिये मैं जैसी व्याकुल थी उसे कोई कैसे जान सकता है ?—मेरे आनेही से क्या नहीं समझती?—क्या मुझे भी यज्ञ का निमंत्रण था ? क्या पिता ने इस कङ्गालिनी को बुलाने के लिये भी किसी को भेजा था ? यदि तेरे हेतु प्राण दुखित न होता, तो काहो मैं कैसे आती ? क्या मुझे घृणा लज्जा मान, अपमान नहीं है ? क्या मुझे केवल यज्ञ में भोजन करने ही का लोभ है ? क्यों माता, उत्सव देखने और यज्ञ में भोजन करने के लिये भला कोई इतना अपमान सह सकता है ? क्या मैं तेरी ऐसी ही गँवारिनी और भोजन की लोभी पुत्री हूं ? यद्यपि इस समय मैं भिखारिनी हूं, तौभी पुत्री तो राजा रानी की हूं !

प्रसू०--बेटी सती! अब इस अभागिनी को अधिक कष्ट मत दे! अब सहा नहीं जाता—तू सब जानती है, तू ने अपने पितृव्य नारद के मुख से तो सब हाल सुनाही है—तो फिर क्यों वाक्यबाण से मेरा हृदय छेदन करती है बेटी? न जाने मैंने जन्मान्तर में कैसे घोर पाप किये हैं, कि जिस्से चिरकालिक दयामय विधाता ने, इस शेष दशा में निर्दय हो कर, मेरे जगतमान्य, सुबुद्धि पति को कुबुद्धि दी है हाय सुमेरु को भी राई बना दिया। नहीं तो जब मैं अबला और अज्ञान होकर देख समझ सकती हूं तो क्या महाराज एसे ज्ञानी पुरुष होकर भी राग क्रोध से ऐसे अंध हो जांय कि आगा पीछा कुछ न विचारें—सम्पत, बिपत्त जाग्रत और स्वप्नावस्थामें भी जिनने शिव के अतिरिक्त अन्य को नहीं जाना, वह उन्मत्त होकर उसी प्राणाधार शिव से इतने विमुख हो जावें और इतना अत्याचार करने को उद्यत हों। बेटी! तुझ पर जो इतनी दया, माया थी वे सब भूल गये - सती! तू अबूझ बालिका है, कहां यहां आकर आमोद आहलाद से भोजन करती, खेलती फिरती सो तो नहीं हुआ, बरन दुखदायी बातों के सुनने से तेरे हृदय में कष्ट हो रहा है, यह क्या सामान्य दु:ख है?

सती—माता ! मैं आमोद आह्लाद करने नहीं आई इन्हीं बातों को पूछने, जाचने आई हूं—इससे मुझे क्लेश नहीं होगा, बरन तुमारे दु:ख की भागीनी होकर उसे मिटाने को आई हूं !

प्रसू॰—पुत्रि, सती ! मेरे दु:ख का अंत नहीं है—तू बालिका है, उसका भार कैसे सम्हालेगी तौभी तेरे चन्द्रमुख के मधुर बाणी द्वारा "माता" शब्द निकलने ही से मेरा सब दु:ख दूर हो गया।

सती—नहीं माता ! मैं बालिका नही हूं—सब समझती हूं; इस अभागिनी कन्या ही के कारण तुम्हें इतना ताप हुआ है ! हाय मैने कैसी कुघरी में जन्म लिया, भला माता पिता को सुखी करना तो दूर रहा उलटे उन लोगों के मर्मपीडा की मै मूल कारण हुई। अब मुझे पूर्ण निश्चय होगया कि इस पापी शरीर के रखने से माता पिता को तिल मात्र भी सुख नहीं मिल सकता। जिस संतान से माता पिता को क्लेश हो, वह महापापी है; मुझे वही पाप घेरे है; अब इस पापमय शरीर का त्यागनाही उस महापाप का प्रायश्चित दिखाई देता है दूसरा कुछ नहीं सूझता जब लों यह प्रायश्चित न करूंगी तब लों मंगल की आशा नहीं है !

प्रसू०—(सरोदन) मेरी बेटी सती ! पुत्री ! तूं क्या कहती है ? क्या तू इसी लिये यहां आई है ? हा निठुर ! हा पाषाणी, तू क्यों अपनी माता के सन्मुख ऐसे हृदयबिदारक बचन कहती है ? क्या मैंने अपना दुख तुझे इसी लिये सुनाया कि तू जले पर और नमक छिड़केगी मैंने तो समझा था कि मेरा दुख सुन तू अपने सुमधुर आश्वासित बचनों से मेरे तापित प्राण को शीतल करेगी, क्या अब तू अच्छा करती है ? क्या तूने भली भांति अपनी माता का दुख समझा है ? यह तेरा दोष नहीं है बेटी; जिसके भाग्य में आग लगती है उसको अमृत भी बिष का फल देता है ! अरे निर्दई बिधाता ! क्या तेरे मन में यही था ? मेरा क्या दोष है, कि, आज तू इतना निर्दय हो गया है ? मैं जिधर नेत्र उठा कर देखती हूं सब ओर मानो आग ही लगी है ! जिस का मुख देखती हूं बिपच्च ही दिखाई देता है । पुत्री सती ! अब सहा नहीं जाता ! तेरे आने के प्रथम ही प्राण प्रयाण कर चुका था; परन्तु तेरे आने से ठहर गया; तेराही मुख देख कर फिर हरा होगया, अब तेरे ही मुख से उस को मृत्युबाण लगता है ! अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ ! परन्तु शोच केवल इतना ही है कि लोक में

तुझे मातृहत्या-भागिनी कह कर सब लोग तेरी निन्दा करेंगे—तेरा निष्कलंक नाम चिरकलङ्कित हो जायगा! और दूसरा दुःख यह है कि इस चण महाराज की जो सुमति वा सुगति होने की आशा थी वह भी न होगी और न मैं वह देखने पाई। अब इस प्राण को त्याग करूंगी।

सती०—माता धीरज धरो, तुमारी यह दशा मुझसे देखी नहीं जाती। जो होनी थी सो हुई, अब धैर्य्यधरो। माता, पिता जी को जो करना था वे तो कर चुके! अब एक ऐसे यत्न करने की चेष्टा करती हूं, कि जिस्में चारो दिक्की रचा हो।

प्रसू०—(सती का लिलाट चूम कर) अरे मेरी बेटी, सर्वगुण की गुणवती सरस्वती है! आशीर्वाद देती हूं, कि चिरायु हो! बेटी! इसी चण वह कह, वही यत्न कर जिस्में चारो दिक् की रचा हो!

अखि०—सती! तेरे इस बचन से प्राण शीतल हो गया! पहिले तो तेरी बात सुन कर क्रोध हुआ था, रोलाइ भी आई थी! परंतु अब माता का ताप मिटा! माता ने जो कहा है वही कर, इसी में सबका कल्याण है।

सती०—माता और क्या कहैंगी बहिन? जबलों उनके जामाता पर पिता जी क्रोध छोड़कर प्रसन्नचित्त न

होवेंगे तबलों किसी पक्ष के मंगल की आशा दिखाई नहीं देती, इससमय केवल पिता को समझानाही मुख्य कर्तव्य है।

अश्वि०—मैंभी तो वही कहती हूं, कि माता समयानुसार पिता को समझा बुझाकर शान्ति करेंगीं।

सती०—"समयानुसार" बहिन यह तो सम्भव नहीं—अभी देख पड़ेगा! माता अब क्या कर सकती हैं? क्या माता ने पिता के समझाने में कुछ त्रुटि किया है? माता को जो कुछ कहना, करना, उचित था, सब करके थक गयीं अब एक बार मैं भी तो देखूं—

प्रसू०—(मुखचुम्बन पूर्व्वक) मेरी बेटी अज्ञान बालिका है! अरे बेटी तू अभी निरी अबूझ ह, क्या देखेगी?

सती०—माता! मैं एक बार पिताजी के श्रीचरणकमल का दर्शन करूँगी! पिता के निकट खड़ी होऊँगी, उनके चरणों पर गिरकर उनके क्रोध का आज भिक्षा में माग लूंगीं। मैं उनकी पुत्री हूं, वे मेरे पिता हैं; मैं बालिका हूं, वे प्रवीण हैं; मैं स्नेहपात्री हूं, वे स्नेहमय जनक हैं; जब मैं यहां रहती थी उनका गला पकड़ कर जो चाहती थी, जिस बस्तु के हेतु कहती थी, उसे वे शीघ्रही ला देते और मेरा कहना करते थे! मैं उनकी वही पुत्री हूं और वे भी वही

पिता है; मैं आज भी उसी भाँति उनका गला पकड़ूंगी, उसी भाँति मागूंगी, उसी प्रकार हठ करूंगी! उस समय वे "नहीं" न कर सकेंगे! उनके जामाता ने जो उनका मान नहीं रक्खा, इसी कारण उनको क्रोध है, इसी से उनको अभिमान है; मैं चरण पकड़ कर रोते २ उनका क्रोध और अभिमान दूर कर दूंगी उनके जामाता ने जैसा अप्रिय कार्य्य किया है, वैसेही निमंत्रण न देने से उनका भी अपमान हो चुका मैं उस अपमान को अपने सिर पर रखकर स्वयम् यहां आई हूं अब देखूं पिता जी क्या करते हैं कुछ भी तो विचार करेंगे! (उत्थापन) माता आज्ञा दो, अब क्यों विलम्ब करती हो?

प्रसू०—पुत्री सती! क्यों ऐसा करती है? कुछ देर बैठ कुछ भोजन कर बेटी, मैंने बहुत दिनों से इस चन्द्रमुख को कुछ नहीं दिया—

सती०—नहीं माता, इस क्षण यह बात मत कहो! पिताजी के निकट जाकर, भिक्षा मांगूंगी और जब पाऊंगी तभी आकर भोजन करूंगी! यदि भिक्षा नहीं मिली तब——(अधोमुखी हो और चिन्ता करके) यह देखो माता, प्रभात हुआ—घर में दीपक के प्रकाश से बाहर की उँजियारी मालूम नहीं होती सब

पक्षी बोल रहे हैं, चारो ओर कलरव हो रहा है, दीपक की द्युति मन्द हो गई है। यह सुनो गान्धारी लोग गाते हैं, अब कैसे भोजन करूं माता?

[सब का प्रस्थान।

(पटाक्षेप)

—✽✽●—

(रागिनी भैरवी ताल जट् तिताला)

हे जगदीश जगहु किन भोरे।
विगत निसा सुख प्रगट भानु भे—
हे जगदीश जगहु किन भोरे।
तव कन्या त्रिभुवनधन्या इत, राज रही जननी के कोरे।
दुखतमनाशक सुखपरकाशक मंगल छाय रह्यो चहुंओरे
जैसे भ्रमर पाय मधु गूंजत, सती पाय पुरजन रस बोरे ३
त्यागि तपोबन आये ऋषिगन, निरखहु नाथ नयन के कोरे
उदित प्रताप आपको दिन २ सेवक सुजश कहत करजोरे

—✽✽✽—

द्वितीय गर्भाङ्क।

स्थान दक्षनगरी—राजपुरी का सिंहद्वार।

(नन्दी, शान्तिराम और दो द्वारपाल उपस्थित)

शान्ति०—वृषभ बाँधि आयो अब कस कर।
चलत न नन्दी तू किन भीतर। (प्रवेशोद्यत)

प्र०द्वा०—(रोष पूर्व्वक) कौन है रे ? कौन है ? क्यों
नहीं बोलता ?

शान्ति०—मैं शान्तिराम, शान्तिराम, शान्तिराम हूं ।

प्र०द्वा०—कहां का शान्तिराम ?

शान्ति०—शान्तिपुरी का शान्तीराम ।
पिता हमारे आत्माराम ॥

प्र०द्वा०—कहां से आया है ?

शान्ति०—गाय बाघ एक भाव जहँ, भूत पिशाच निवास ।
फलें फूलें सब वृक्ष जहँ, बिनु ऋतु बारहमास ॥
हिंसा बैर बिरोध नहिं जहां न व्यापै रोग ।
रहौं तहां आयो यहां माता के संयोग ॥

प्र०द्वा०—यह क्या बकता है भई, कुछ मालूम नहीं
होता, पागल है क्या ?

द्वि०द्वा०—तुम ठहरो, मैं जाता हूं। इसका पागलपन
भुला देता हूं (शान्तिराम के प्रति) क्योंरे आत्माराम
के पुत्र! नहीं जानता यह राजगृह है, इस ड्योढ़ी से
जाने में यमराज भी भय करते हैं, तू यहां पागलपन
कर के मरने आया है ? तू ड्योढ़ी के भीतर कहां
जाता है ? ।

शान्ति०—राजसभा मखशाला जहँवां ।
देखन जाइब होउ जन तहँवां ॥

रोकु न मग मूरख उतपाती ।
हम सब हैं राजा के नाती ॥
नृप के निकट जाब जेहि औसर ।
देखिहो तहँ जस पाइब आदर ।
राजा निकट उड़ाइब गाँजा ।
गाइब गीत बजाइब बाजा ॥
देखि विहरि जैहै तुम्र छाती ।
तब जनिहो राजा के नाती ॥

द्वि०द्वा०—(धक्का दे कर) नष्ट पागल, इतनी बड़ी स्पर्द्धा !

शान्ति०—मर्यों २ मैं नन्दी भाई ।

तू कस नाहि छोड़ावत आई ।
सठ मारत मोहिं ग्रीव दबाई ।
अब कब करिहो आय सहाई ॥

(नन्दी द्वितीय द्वारपाल का केश खींच कर शान्ति-राम को छोड़ाता है)

द्वि०द्वा०—(प्रथम द्वारपाल के प्रति चीत्कारपूर्व्वक) अरे भाई बड़ी विपत्ति है, शीघ्र आओ ।

प्र०द्वा०—कुछ भय नहीं, आया (नन्दी को प्रहार करता है)

नन्दी—हां ! (गला पकड़ कर दोनों द्वारपालों को दूर फेंक देता है—दोनों अचेत हो गये)

शान्ति०—हाय भयो अनरथ बड़ो बचे कि मरिगे दोय।
मेरे कारण जो मरे तो मोहिं पातक होय॥
(दोनों को उठाकर पंखा इत्यादि शुश्रुषा से सावधान करता है।)

दोनों०—(सचेत हो कर अपने २ गर्दन पर हाथ रख कर) अरे बाप! उः! आहिरे! अरे भाई! मरे! ओः!

शान्ति०—हाय अबूझ मूढ़ रजपूत।
जाने नांहि कि शिव कर दूत॥
यमदूती भांजहि जेहि त्रासा।
तेहि कहँ मारेसि तू केहि आसा॥

(वैष्णव का प्रवेश)

वैष्ण०—हैं! यह क्या? तुम सब सिंहद्वार के रक्षक, तुम लोगों की यह दशा किसने की?

द्वि०द्वा०—(कातर स्वर से) यह देखो, बन्दर है कि भूत है कि न जाने कौन है?

वैष्ण०—(दृष्टि पूर्व्वक) अरे बाबा यह कौन है?

शान्ति०—कैलासी यह नन्दी भ्राता।
जेहि पद सदा शान्ति लपटाता॥

वैष्ण०—ओः नारायन! मैं समझ गया यह उसी भूतड़े का एक भूत है! अरे नष्ट! निमंत्रण तो गया ही

नहीं, तो भी यह आकर अत्याचार कर रहा है! (चिल्लाकर) नगरपाल! शीघ्र आओ, नहीं तो सर्व्वनाश होता है!

(नगरपाल का प्रवेश)

नग०—यह क्या हो रहा है?

वैष्ण०—यह देखो! राजा ने निमंत्रण नहीं दिया, उसी से क्रोध करके उन्होंने एक भूत भेजा है! अत्याचार निवारण के लिये राजा ने यज्ञ किया! वही अत्याचार उनकी राजपुरी में हो रहा है!

नग०—कौन है, नन्दिकेश्वर! तुमने भाई ऐसे ज्ञानी हो कर ऐसा कर्म क्यों किया? एक तो तुम लोगों का यहां आना अनुचित, यदि आये भी, तो ऐसा अत्याचार क्यों?

वैष्ण०—हा! हा! हा! भूत और फिर ज्ञानी भूत! और तिस पर भी उचित अनुचित का बोध!—भूत को फिर अत्याचार का विचार! आप कैसी विलक्षण बात कहते हैं, क्या आप भयभीत हो कर स्तुति करते हैं? दूर क्यों नहीं करदेते; यह पाखंडी "नन्दिकेश्वर" जैसा इस का ईश्वर वैसाही यह भी ईश्वर है, जैसे वह महात्मा वैसाही यह ईश्वर! भूतेश्वर का दूत भी भूतही है! फिर उसे भय कैसा! दूर कर दो, शिघ्र दूर कर दो

यज्ञ नष्ट होजायगा। यदि न होसके तो कहो ओझा सोझा को बुलावें, कि बचा को हांड़ी में बन्द करे।

(नन्दी त्रिशूल से बैष्णव की कंठ में स्पर्श करता है ।)

बैष्ण०--(हाथ से अपना कंठ पकड़ कर) आः। उंः। मरे। बाप रे बाप। उंः। उंः। उंः। उंः।

नग०—यह क्या? अ आ इ ई—यह स्वर वरणोच्चारण क्यों? अब और वाक्य स्फूर्ति नहीं होगी, क्यों नहीं होती?

बैष्ण०—(किंचित सिर हिलाकर) आः। उंः। आहिरे। बापरे!

नग० - कैसा उतपात है। यह तो विषम कष्ट देख पड़ता है। दर्परामसिंह! उठते हो? होसके, तो जाकर सभापाल को बुला लाओ!

[धीरे २ दर्परामसिंह का प्रस्थान।

शान्ति०—(बैष्णवके प्रति)

तुम सांवरे ठाकुर के अच्छे सेवक धौल को देखि महा बिलखात हो। लिए माल किए जपमाली में हाथ खटा खट कै कै हिये हरषात हो॥ सिर टीका दिए हरि मंन्दिर को हरि मंन्दिर में कबहूं नहि जात हो। करो सांवरे गोर में भेद सदां हकनाहक बंचक भक्त कहातहो॥

(छाती पर हाथ रख कर।)

शान्तिराम लखि सांवरो तजिदे औरै क्रोध।

सांवर गोर अभेद हैं यह जिय राखे बोध।

(सभापाल और दर्परामसिंह का प्रवेश ।)

नग०—महाशय! तनिक निवेदन सुनिये! निमंत्रण न होने के कारण अथवा जिस कारण से हो, यह देखो नन्दी अब ऐसी दुष्टता करता है!

सभा०—कैसी दुष्टता?

नग०—इन दोनों द्वारपालों को तो मार के रुधिरमय कर डाला और इन बैष्णव बाबाजी को भी त्रिशूल से खींचा और मार के वाक्यरोध कर दिया है।

सभा०—हम तुम भी तो यहीं हैं हम लोगों का तो कुछ भी अनिष्ट नहीं किया! इन सभों ने अवश्य कोई अपराध किया होगा!

नग०—अपराध तो कुछ नहीं है, यह बलपूर्व्वक प्रवेश करता था, द्वारपालों ने निषेध किया! और इन बैष्णव बाबाजी ने केवल दो एक बात कही थी!

शान्ति०—महाराज को यज्ञ देखने जाते धक्का पायो।
शिव शंकर को गाली देतो यह बैरागी आयो॥

सभा०—कौन है शान्तिराम? प्रणाम! कुशलानन्द से रहे तो! कहाँ से आते हो?

शान्ति०—रहत रह्यौं कैलास में नन्दी भाई संग।
रथ पर आयौं मातु के मन में बड़ो उमंग॥

सभा०—मैं कैलास में गया था और माता के रथ पर आया हूं? धन्य शान्तिराम! तुमारे दर्शन से मैं पवित्र हुआ! प्रणाम करता हूं, चरण रेणु देओ!

(नारद का प्रवेश।)

(सभापाल और नगरपाल का प्रणाम करना)

शान्ति०—(नारद के पद पर लोट कर)—

इन्ह चरनन्ह को धूरि ते शान्ति भयो आनन्द।
सर्व्वलोक गांजा बन्यो हौ कपाल सुखकन्द॥
प्रिय टेकी कहँ छाड़ि कै तुम आए हौ नाथ।
टेकी बांधि मुकुन्द ढ्ढ हमहु चलब अब साथ।

ना०—(सहास्य) शान्तिराम! तू किसके संग आया? नन्दी भी तो आए हैं?

सभा०—कनिष्टा राजकन्या भी तो आई हैं!

ना०—हां! तब तो ठीकही है!

सभा०—(सहास्य) जहां आपही निमंत्रणकर्त्ता हैं, वहां फिर अयोग्य कैसे हो सकता है?

ना०—क्या मैंने निषेधित स्थान में निमंत्रण दिया है?

सभा०—तो शान्तिराम का कैलास में गमन कैसे हुआ?

ना०—वह तो केवल दर्शन के लिये था!

सभा०—आपका तो "दर्शन" था, इधर लोमहर्षण व्यापार उपस्थित है।

ना०—कहां? यह क्या जो देखते हैं?

सभा०—क्या पुरद्वार पर? यह तो सामान्य है; पुर में बड़ा भयंकर है!

ना०—पहिले द्वार पर तो हुआ जाय, फिर देखाजायगा "पतितः पर्वतो लघुः" (नन्दी के प्रति) भाई इस अबोध का कंठारोध तो मुक्त करो; बोध का उपाय एकबारही होजायगा!

(नन्दीका त्रिशूल हटा लेना)

सभा०—तो फिर विलंब क्या है? चलिये।

ना०—भाई कहां हैं?

सभा०—मंत्रणा गृह में। मैने सुना है कि सती भी वहां जाने को उद्यत है—

ना०—तब तो "शुभस्य शिघ्रं" शान्तिराम आओ न! नन्दी भाई, क्या तुम भी चलोगे? चलना हो तो आओ।

[सब का प्रस्थान।

(पटाक्षेप)

पंचमअंक।

(स्थान दक्षपुरी—मंत्रणागृह)

(दक्ष और नारद उपस्थित हैं)

ना०—मैं उन लोगों को मार्ग मे देख कर अभी आयाहूं देखकर क्या वरन साथ छोड़ कर चला आया हूं। दधीच, मरीच, अंगिरा, दुर्वासा, इत्यादि सब ऋषि गण आ रहे हैं। उन लोगों को देख के ढेकी से उतर वार्तालाप करते २ बहुत दूरतक आया। तदनन्तर मैं अपने वाहन पर चला आया, वे लोग पैदल आते हैं अतएव कुछ विलम्ब हुआ।

दक्ष—क्यों, वार्ता क्या हुई; यज्ञ विषयककुछ चर्चा हुईथी?

ना०—फिर दूसरी वार्ता क्या होती?

दक्ष—यज्ञविषयक क्या २ बातें हुई उसे मैंभी सुना चाहता हूं।

ना०—यही बात कि मुझे देखकर उन लोगों ने पूछा कि क्यों नारद निमंत्रण देते समय तो गुप्त विषय कुछ भी प्रगट नहीं किया अब सुनते हैं कि शिवहीन यज्ञ होगा। भला शिवको छोड़कर यज्ञ कैसे होगा? यह सुनकर किसी ने कहा, "शिव का भाग न देना

बेद की विधि के विपरीत है सुतरां यज्ञ की सिद्धता नहीं होगी"! किसी ने कहा कि "प्रजापति दक्ष सर्वशास्त्र के ज्ञाता हैं, और तुम उन के अध्यक्ष हो, फिर ऐसी अशास्त्रीय व्यवस्था और महान् दोषाकर गरुतर नई रीति क्यों होती है?" किसी ने कहा कि, हम लोग तो आते नहीं, परंतु क्या करें ब्रह्मा के पुत्रों में वे सबसे श्रेष्ट हैं, ऋषियों मे राजर्षि, नरों में नराधिप, तेजस्वीयों में महातेजस्वी, नारियों में महेश्वरी सती के पिता, देवताओं मे महादेव के श्वसुर हैं। जब ऐसा यज्ञ करते हैं तो कोई दूसरी अगोचर निगूढ़ संहिता उनके पास होगी या कदापि वेदकर्ता पिताके यहां से कोई दूसरा वेद लाये होंगे अथवा कोई नूतन संहितासूत्र स्वयम् प्रस्तुत कर लिया होगा जो हो! भला देखें तो कि क्या है, यही समझ कर हम लोग आये हैं"।

दक्ष०—तो फिर तुमने क्या उत्तर दिया?

ना०—मैंने कहा, कि जिस देश में मेघ के जल से कृषी होती है, उस देश में यदि अनावृष्टि हो अर्थात् मेघ का संचार न हो, तो क्या होता है? उन लोगों ने कहा कि "दुर्भिक्ष, जीवक्षय, और सर्व्वनाश होता है और क्या होगा?"

दक्ष०—भाई, तुमने मेघ का दृष्टान्त क्यों दिया ? यह बात हमारे प्रतिपक्ष है इससे स्वपक्ष की रक्षा नहीं होती। अच्छा नहीं किया भाई ! अच्छा नहीं किया !

ना०—अभी आगे तो सुनो—

दक्ष०—अब क्या सुनें ? तो भी तुमारी बात है ! उसका मुख्यार्थ, गौणार्थ, सब समझना कठिन है ! भला तुमारा प्रत्युत्तर तो सुनें !

ना०—मैंने कहा, कि "क्यों ? वर्षा के अभाव से क्या कृषी-कार्य्य नहीं होता ? 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य' । बुद्धिमान् कृषक कूप खोदते हैं अथवा कृत्रिम जलप्रणाली द्वारा जल लेकर काम चलाते हैं !

दक्ष०—इस पर उन लोगों ने क्या कहा ?

ना०—उन्होंने यही कहा कि "जल तो चाहिये न" ! मैंने कहा "मेघ के जल न होने पर भी तो काम चलता है" ! तब उन लोगों ने फिर कहा "मेघ के स्थान पर दूसरे का अवलम्ब तो आवश्यक है ! उसी प्रकार शिव के स्थान पर अन्य को यज्ञभोक्ता होने की आवश्यकता है" ।

दक्ष०—फिर तुमने क्या कहा ? देखें तुमारी बुद्धि कहां तक है ?

ना०—मुझे बुद्धि तो नहीं है, परन्तु आपकी सहवास-जनिता बुद्धि कहां जायगी ? मैंने कहा कि "शिव के स्थान पर हुताशन भोक्ता होंगे" ।

दक्ष०—भला ! भला ! सब तो सुनाओ ! तब उन लोगों ने क्या कहा ?

ना०—उन लोगों ने कहा कि "कैसे ?" मैंने कहा कि "क्या शिव, क्या ब्रह्मा, क्या विष्णु, केवल निर्गुण के विकृति मात्र हैं, निर्गुण हीं से सगुण हुये निर्गुण ही से त्रिभाग, त्रिकार्य्योद्देश्य से त्रगुणात्मक सृष्टि हुई, इसे स्वीकार कर के बोल उठे कि "अच्छा तो उसी त्रकार्य्य साधनकारी को भाग न देने से कैसे यज्ञ होगा ?" मैंने उत्तर दिया, कि यदि एक ही में त्रिगुण पाया जाय, अथवा एक ही आधार में तीनों गुण बांट दिये जांय तो फिर तीन व्यक्तियों की भिन्न २ आराधना करने की क्या आवश्यकता है ? इतना सुनते ही वे लोग परस्पर कुछ वार्तालाप करने लगे और क्षणेक मौन रह कर बोले कि "नारद आज तुमारे मुंह से एक नई बात सुनने में आई है एक आधार में त्रिगुण, ऐसा आधार कौन है ?" मैंने कहा "हुताशन" तब उन लोगों ने कहा कैसे ? फिर मैंने कहा कि देखिये, क्यों नहीं है अग्नि से

ताप भिन्न अन्य वस्तु से उत्पत्ति की सम्भावना नहीं है, सुतरां अग्नि में रजोगुण विद्यमान है ! तेजोमय पदार्थ से जगत की रचा होती है, जीवों की जीविका का निर्वाह होता है सर्व्वदेही के देह की पालना होती है, उष्णता के अभाव से प्राण का अभाव हो जाता है, सुतरां पालनकारी सत्वगुण भी उसी में है ! और अग्नि की संहारक शक्ति की तो चर्चा ही चलाना व्यर्थ है; सुतरां तमोगुण का अभाव कैसे हो सकता है ?

दच०—अच्छा कहा ! उत्तम कहा ! हमारी मनोगत—प्राणगत—अन्त:स्थलगत वार्ता की मानो व्याख्या कर दी! धन्य नारद! धन्य देवर्षि! धन्य भ्राता, धन्य तुमारा तपोबल ! और धन्य तुमारी बुद्धि !

ना०—मैंने उन लोगों को समझा दिया, कि हुताशन को यज्ञेश्वर बनाने के लिये आज तक सामान्य याज्ञिकों का साहस नहीं हुआ इसी से ब्रह्मा, विष्णु, शिव की इतनी प्रभुता थी परन्तु अब बड़े भारी याज्ञिक से काम पड़ा है! तेजस्वियों के निकट किसी का अपरिमित तेज नहीं रह सकता ! यदि एक ही व्यक्ति की पूजा से सर्वकार्य सिद्ध हो तो तीन व्यक्तियों के पृथक २ पूजन करने की क्या आवश्यकता

है ? एक अग्नि को आहुति देने से सब देवों को पहुंच जाती है अग्नि का असीम गुण है—अग्नि सर्व्वभुक्, सर्व्वमुख है—उसी अग्नि के रहते फिर यह देवता, वह देवता, यह आये कि नहीं, वह आये कि नहीं—इनने भोजन किया कि नहीं, उनने भोजन किया कि नहीं, क्या यह सब फिर बूझने बिचारने की आवश्यता रहेगी ? तौभी जो ब्रह्मा और बिष्णु को बुलाया है यह महाराज की सभ्यता और भद्रता और कृपा है। बिशेषत: राजर्षि का ब्रह्मण्य तेज और राजपद का तेज पाकर अग्नि तेजस्वी हो जावेंगे ! जिस अनुपम तेज के प्रभाव से शिवानी का जन्म हुआ है यदि प्रजापति वही तेज अग्नि को दे देवें तो उसके प्रताप से अग्नि सृष्टिकर्ता बिधाता के स्थानीय होसकते हैं, और यदि हमारे भाई अपने प्रजापालक तेज को दे देवें तो अग्नि प्रजापालक बिष्णु के स्थानीय बन जावेंगे, और अग्नि की संहारक शक्ति तो सब पर प्रगटही है। सृष्टि-संहारक कार्य्य यदि यथेष्ट न भी हो, तौभी सर्व्व-संहारक तमोगुण जो उनके जामाता शिव मे है उसे अग्नि को दे देना उनके लिये कुछ कठिन नहीं है जामाता का क्या ? यदि वे अपने तमोगुण का

कणांश भी यज्ञाग्नि में छोड़ दें तो शीघ्र सर्वनाशक हो उठेगा इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

दक्ष०—(उठकर आलिंगन और ललाटचुंबन पूर्व्वक) आज मैंने जाना कि तुम मेरे यथार्थ सहोदर हो; पिता के और जितने मानस पुत्र हैं वे सब वैमात्र (सौतिले) हैं।

ना०—जब हम लोग मातृगर्भज नहीं हैं तो वैमातृ भी नहीं वरन वैपितृ कहना उचित है।

दक्ष०—अच्छा, अच्छा, एकही बात है जो हो भाई, मैं तुमारा चिरकालिक ऋणी हुआ। यदि तुम न होते तो यज्ञसम्पादन में मुझे असीम कष्ट भोगना पड़ता अब मैं खूब समझ गया कि तुमारे रहने से मेरी आशा पूर्ण और अहंकारियों का अहंकार चूर्ण होवेगा और तुह्मीं से मस्तकोन्नति होने की सम्भवना है।

ना०—मेरे रहने से क्या होनेवाला है - आपके गुण प्रताप से सब कुछ होने की आशा है मैं तो केवल उपलक्ष मात्र हूं। फल क्या कहूं। जब मैं इस शिवशून्य यज्ञ के आश्चर्यमय फल को ध्यान करके देखता हूं तो मेरा शरीर आनन्द से रोमांचित हो जाता है। भला आप क्या और मनुष्यों की भांति मनुष्य रहेंगे? कभी नहीं, क्या फिर आप की ऐसीही नराकृति रहेगी?

उस समय आपके मुखकी श्री कुछ औरही प्रकार की हो जायगी नेत्रों की द्युति अद्भुत हो जायगी यहां लों कि केश, दाढी पर्यन्त भी अप्राकृत भाव धारण करेंगे, त्रिभुवन में ऐसा कोई न रहेगा जो आप के दर्शन से चमत्कृत और भयभीत न हो। जब लों इस भूतल में शास्त्र और कवियों की कविता और अद्भुत रस का आदर और आकाश में चन्द्रसूर्य्य रहेंगे, तब लों आप की अलौकिक कथा की कीर्त्ति बनी रहैगी इसमें तनिक भी सन्देह नहीं, स्वर्ग मर्त्य और पाताल बासियों में से किसी के साथ आप की समता न दी जायगी।

दक्ष—(सहास्य) जब हो जाय तो जानें—

ना०—अब विलंब क्या है?—

(सभापाल का प्रवेश)

दक्ष०—सभापाल! सभा का क्या समाचार है?

सभा०—(हाथ जोड़ कर) महाराज! सभा का तीनों महाविभाग त्रिलोकबासियों से यथायोग्य परिपूर्ण हो गया हे। दिग्पाल देवता और ऋषिगण सभी आ गये हैं, रसातलबासी भी उपस्थित हैं। मर्त्यलोक के राजा प्रजाओं में से कोई शेष नहीं है—आशा से

अधिक भीड़ हुई है और श्रेणीविभाग होने के कारण स्थान की संकीर्णता अथवा किसी भाँति का कोई असमंजस भी नहीं है। यज्ञारंभ के हेतु सब वस्तु प्रस्तुत है, याज्ञिक ब्राह्मण गण भी प्रस्तुत हैं, जिन २ लोगों के प्रति जिस २ स्थान पर जो जो कार्य्यभार है वे उस २ कर्म्म में उद्यत हैं। सब प्रस्तुत है—और सब उपस्थित है; केवल तीन प्रधान सिंहासन शून्य हैं !

दक्ष—किसका किसका ?

सभा०—एक महाराज का, एक विष्णु का, और एक पितामह ब्रह्मा का !

दक्ष—हमारा तो ठीक है; परंतु और दो के शून्य रहने का क्या कारण है? (नारद के प्रति) क्या वे लोग भी न आवेंगे ?

ना०—इसके निमित्त क्या चिंता है? यहां जो हुताशन को सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण का आधार ठहरादिया है सो क्यों ? हां मैंने उन लोगों का कुछ अभिप्राय पाया है—शिव को न बुलाने के कारण वे लोग भी मुंह फुलाये हैं। वे लोग जैसे एक से तीन हैं, वैसेही तीनों एक हैं। इन लोगों ने एकमति हो कर सम्पूर्ण सृष्टि को अपने आधीन कर रक्खा है। आज इस अद्भुत काण्ड को देख कर उनका माथा ठनकने लगेगा।

(नन्दी और शान्तिराम का प्रवेश)

दक्ष—(नन्दी को देखकर) यह कौन? यह यहां क्यों आया?।

सभा०—जी यही तो मैं निवेदन करने को था, कि कैलास से सती आई हैं, महाराणी भी वरणकार्य्य में प्रस्तुत हुई हैं।

दक्ष—सती आई है। यह कैसे हुआ? उसे कौन बुला लाया?

(सतीका प्रवेश; पीछे २ अश्विनी, आश्लेषा, और मघा)

सती—पिता जी, मुझे किसीने नहीं बुलाया तुम्हारी कांगालिनी आपी आई है। (प्रणाम करना)

दक्ष—यह क्या?—

मघा—भला बाबा, सतीको बुलाने के हेतु क्या आपने किसी को नहीं भेजा!

दक्ष—नहीं पुत्री, मैंने किसी को उसको बुलाने के हेतु नहीं भेजा। फिर वह बात मत छेड़। सती नामक जो मेरी एक कन्या है उसे मुझे भूलने दे और सती नामक तुम लोगों की भी जो एक बहिन थी उसे तुम लोग भी भुला दो।

अश्विनी—ऐसी बात मत कहो बाबा, शिवने जो किया सो किया, परन्तु सती का मुख देखकर भी आपने उस बात को नहीं भुलाया?

दक्ष०—नहीं पुत्री! वह कदापि भूलने की नहीं!—वह अग्नि बुझने की नहीं। तुम सभोंके आने से मैं अत्यन्त सुखी हुआ, यही उत्तम है, अब दूसरी बातों से प्रयोजन नहीं है बेटी! (प्रसूती और सनका का प्रवेश—प्रसूती के प्रति) यह लो अब तुमारा पूर्णचंद्र तारागणों से घिरा हुआ उदय हुआ है—मैं भी बचा। अग्नि भी शीतल हुई, सब की रक्षा भी हुई। हमारा भाग्य अथवा हमारी प्रतिष्ठा का चाहे जो हो—तुमारा प्राण तो शीतल हुआ बस इसी में भला है, दूसरी बातों से कुछ काम नहीं।

प्रसू०—(सती के प्रति) पुत्रि! तुझे रातभर मार्ग में क्लेश हुआ होगा, थोड़ीदेर विश्राम करले नहीं तो तू दुखी होगी। बेटी! आ चल, यहां रहने की कुछ आवश्यता नहीं है (दूसरी कन्याओं के प्रति) तुमसब भी आओ बेटी, तुम सब भी रातभर की जागी हो।

मघा—नहीं माता, हम लोग दिव्यरथ में दिव्यशय्या पर सोई हुई आई हैं। सती बैल के गाड़ी पर आई है, इससे उसको बहुत कष्ट हुआ होगा।

दक्ष—हमारे सम्पति को धिक्कार है! हमारे राजत्व को धिक्कार है। हमारे जीवन को धिक्कार है। प्रजापति के निर्व्वन्ध को भी धिक्कार है! अब नहीं—अब देख

सुन नहीं सकते ! तुम सब जाओ बेटी अब और कुछ प्रयोजन नहीं है।

मघा—प्रयोजन क्यों नहीं है बाबा? सती के ऊपर क्रोध करने से क्या होगा? सती का अपराध क्या है? जैसे घर में आपने विवाह दिया, उसी प्रकार की हो गई; सुपात्र को देते तो देख सुन के सुखी भी होते; ऐसे घर में क्यों दिया ?

दक्ष—जो समझ कर दिया सो कहाँ हुआ ? अरे यही नारद भाई तो उसके मध्यस्थ थे इन्हीं ने तो वर को इतनी प्रशंसा की, इन्हीं ने तो हम को सत्यानाश किया! नारद भाई की बातों को जैसा ब्रह्मज्ञान मैंने समझा था, वैसाही फल पाया। भाई ने कहा, कि सब देवताओं से महिमा में बड़े हैं, ऐश्वर्य्य बड़ा है, रूप, गुण, विद्या सामर्थ्य सब प्रकार से बड़े हैं। मैंने भी वही समझा—

सती॰—पिताजी ! जो समझते थे अब भी वही है ! पितृव्य नारद ने तुम से वञ्चकता नहीं की। पिताजी! तनिक क्रोध त्यागो, जैसे प्रथम देखते थे, अब भी वैसही देखोगे। तुमारे ऐसे महाज्ञानीने जो देखा है, उस में क्या भूल हो सकती है ?

दक्ष—नहीं बेटी, पहिले देखने में अवश्य भूल हुई, अबी

का देखना ही देखना है। अनेक स्थानपर बहुतेरे मनुष्यों का यही स्वभाव है, कि सम्बन्ध के पहिले अपूर्व कौशलयुत बर दिखलाते हैं। भला जब हम्हीं भूल गये तो दूसरे की कौन चलावे, हमको मुग्ध करना कुछ सामान्य व्यापार नहीं है —किसी असाधारण अलौकिक ऐन्द्रजालिक विद्या के अतिरिक्त क्या कोई हम को भुला सकता है? परन्तु क्या करूं उसी असामान्य इन्द्रजाल में मैं मुग्ध हो गया। यदि इस चातुरी का बिन्दुमात्र भो मैं जानता तो क्या कभो ऐसा अयोग्य लज्जाजनक सम्बन्ध करता? क्या मैं ऐसे चन्द्र को उस राहुग्रास मे फेंकता? क्या मैं उस बन्दर के कण्ठ में यह गजमुक्ता का हार पहिनाता!!! क्या मैं कभो उस निन्दनीय जलाशय में ऐसा कनकपद्म लगाता?

सती०—पिताजी! वे मायामय हैं—इसी कारण—

दक्ष०—मायामय है—हाय। किस अद्भुतमाया विद्या ने मुझे मोहित कर लिया था—ज्ञानचक्षू में कैसा मोहकारी अंजन लगादिया, जिससे मेरी सर्वज्ञ, सर्वप्रकाशक सर्वप्रवेशक, बुद्धि भ्रमात्मक हो गई—मेरी दर्शनशक्ति, स्मरणशक्ति, अनुभव शक्तिओं पर महा मोह ने अपना अधिकार कर लिया जिससे उसका

रूप मुझे भुवनमोहन देख पड़ा, उसके गुण स्वभाव और चरित्र महापुरुषों के नाईं पवित्र दिखलाई दिये। ऐश्वर्य्य में मानों समग्र संसार का सम्राट और विद्या बुद्धि में देवगुरु बृहस्पति का भी गुरु अथवा वेद-कर्ता विधाता का भी गुरु बोध हुआ। हाय! मैं कैसे पहिचाना कि लोहे ने कंचन का आकार धारण किया है।

सती—नहीं पिताजी! वह सब इन्द्रजाल नहीं था, जो जो आप ने कहा सब सत्य है—इसमें कुछ कभी भ्रम नहीं बड़े विषम संकट में पड़कर लाज परित्याग कर आपके समक्ष आज धृष्टता करती हूं। यह मेरे भाग्य का दोष है कि मेरे पूज्य पिताजी ने कैलासनाथ पर इतना क्रोध प्रकाश किया है और पुर्वानुराग को त्याग कर विरागभाव धारण किया है नहीं तो जिन को आप भ्रमात्मक जानते थे उनको आज प्रकाश-मान देखते।

दक्ष—हा! मै उसे प्रकाशमान देखता! क्या प्रकाशमान देखता? जामाता का रूपगुण ऐश्वर्य्य? इससे अधिक नूतन और क्या देखता? जिसको युवा, सुरूप, और सुपात्र जानता था; अब तो वह हमारे पिता से भी वृद्ध जान पड़ता है, उसके पास राख पात को छोड़

और कौन सा ऐश्वर्य है कि जिसे मैं देखूं ? श्मशान के अतिरिक्त और कौन सा राज्य उसके पास है कि जिसे कोई देखे ? भला राजवेष, राजभूषण, राज-विभव क्या है कि कोई देखे ? जटा जूट उस्का सीस-मुकुट; विल्वशाखा उस्का राजछत्र, वन पर्वत उस्की राजपुरी, लिलाट की अग्नि उस्का राजतिलक। व्याघ्र-चर्म्म उस्का परिधेय वस्त्र, भुजंग उस्का कटिबन्द, श्मशान उस्का राज्य, मृतक उस्की प्रजा, उन्हीं सभों का दिया हुआ कङ्काल अस्थि ही उस्का राजभूषण; भस्मलेप उस्का चन्दन है ! सुना है कि आहार व्यवहार में भी चमत्कार है—धतूरे का बीज भक्ष्य, भांग और विष उस्का पान है; अन्य द्रव्य भी कभी २ भोजन करता है किन्तु भोजनपात्र का नाम तो भद्रसमाज में अकथ्य है। जो चंडाल जाति को भी त्याज्य, पिशाच को भी घृणित है ऐसे मृतक की खोपड़ी में खाता है! ऐसा भी कभी किसी ने सुना है ? फिर विद्या, साध्य, आमोद आह्लाद की बात क्या है कि कहैंगे ? नटबाजी विद्या, भैंस की सींग का बाजा, संगी पिशाच, वाहन बैल, (नन्दी को निर्द्देश पूर्व्वक) मंत्री तो यही भूत है और भिखाही उसकी श्रेष्ठवृत्ति है, भंडयोग दीक्षा, गुणों में तमोगुणधारी है गुरुजनों का मान हरण

करना उसकी कीर्त्ति है! ऐसे पाखंडी राजा की कोई बस्तु उत्तम भी है कि वही राखपात देखूं।

प्रसूती—महाराज! तुमारा चरण धरूं चमा करो, सती का मुख देख कर उस पर दया करो।

दच०—भला, सती ही का मुख देखकर तो सदय होकर बोलता हूं! हाय, यदि मैं कपटविमिश्रित मधुर बचनों के जाल में भूल न गया होता तो क्या ऐसी त्रैलोकबिमोहिनी सुन्दरी राजकन्या को कभी उस उजड्ड बनैले पशु को समर्पण करता—ऐसी कल्पलता को उसी जीवन शोषक बिषब्रुच के आश्रित करता? यह बिचार कर मन स्थिर नहीं रहता! एक बार तुम लोग इसकी दशा तो देखो कि उस बिष ब्रुच के बिषोदगार से इस कल्पलता की कैसी दशा हुई है? इसका मुख तो देखो—हाय! तनिक नेत्र खोलकर इसका अंग तो देखो, हाय! वह सुन्दर स्वरुप, वह दीप्यमान लावण्यता, वह स्वर्ण बरण, वह उषासी प्रभा, वह स्थिर दामिनी सी द्युति, अब कहां है? शिशुकालही से जो स्वभावतः हास्यमुखी थी उस मुख में क्या अब हँसी देख पड़ती है?

प्रसू०—केवल तुमारेही कारण पुत्री की हँसी गई है महाराज! केवल तुमारेही सर्व्वनाशी क्रोध के कारण—

दक्ष०—क्या हम्हीं इसके मूल कारण हैं? क्या हमारेही क्रोध के कारण तुमारी पुत्री का मुख मलीन हो गया है रानी? भला, कदापि ऐसाही हो; तुमारी बेटी का जो यह बेष भूषण है, क्या वह भी हमारे ही कारण से? यह जो कन्या खड़ी है, हम नहीं जानते कि इसे राजकन्या कहने से कोई क्या समझ सकता है? दूसरे की कौन कहै, जिन लोगों ने इसे गोद में खेला कर इतनी बड़ी किया, उन्हीं में से किसी को बुलाकर पूछो तो; किसी को बुलाओ न; और कोई बतलाना मत, भला देखें तो कैसे उसको पहचान सक्ती हैं? क्या इसी पुत्री को भद्र समाज में मेरी कन्या कह के परिचय कराना उचित है? क्या यह बेष भूषण दक्षराजा की कन्या का शोभा देता है? राजनन्दिनी कहना तो दूर रहै, सामान्य गृहस्थ की पुत्री भी कोई नहीं कह सकता, फिर तुमारे अन्तःपुर में जितनी नव्य परिचारिका हैं उन सभों को बुलाओ और इसे मिला कर देखो तो कि उनमें से कौन बस्त्राभूषण में इससे सहस्र गुनी स्रेष्ट नहीं है! बिवाह के समय जो लोहे का कड़ा पहने थी उसको छोड़कर कोई दूसरा गहना उसके शरीर पर देखती हो? मणि, मुक्ता तो दूर रहै, भला क्या

बच्चे को एक जोड़ा संख की चूड़ी भी देने की शक्ति नहीं थी ? अति दीन दुखी पराधीन मनुष्य भी अपने स्त्री वा कन्या को इस बेष से गृह में रखते हुए लज्जित होवेगा भला बाहर जाने देना तो दूर रहै। हाय, कन्यादान के समय जो मैंने इतना अमूल्य अतुल्य बस्त्राभरण दिया था, क्या वह सब बेंच कर खा गया ? यदि दूर के सम्बन्धियों में से कोई ऐसा कुपात्र होता तो मैं कभी नहीं सह सकता यह तो अत्यन्त समीपी जामाता है जिसके समान इस संसार में कोई दूसरा नहीं।

प्रसू०—(स्नेह से सती का हाथ अपनी ओर खींचकर) पुत्रि ! माता की बात मान, यहां अब मत रह, हमारे घर चल—अब तुझे कुछ भोजन करा के मन की व्यथा दूर करूं।

सती—(सरोदन) नहीं माता, अब नहीं, अब घर नहीं जाऊंगी ! तेरे कहने से मैं पिता जी के चरण कमल के दर्शन को आई—उन्हीं को समझा के उनकी क्रोधाग्नि शान्ति करके तब तेरे गोद में बैठ कर भोजन करती सो तो हुआ नहीं ? माता ! पिता जी का स्नेहरूप सुधापान करने आई थी सो घृणा और विष-पिया था—आज वही खाकर चल दूंगी जन्म भर को

बिदा होऊंगी अब फिर तेरे निकट बैठ कर खीर दूध कैसे खाऊंगी मां ?।

प्रसू०—पुत्री सती, अब घाव पर लवण मत छिड़क बेटी।

आखि०—यह कौन सी बात है सती? तेरी कुदशा से दुखी होने के कारण क्या पिताजी दो एक बात नहीं कह सकते ?

सती०—हाय बहिन, यह क्या वैसी बात है? पिताजी यदि मेरे दुख से यथार्थ दुखी होते तो कभी इतने द्वेष, घृणा, और हलाहल मिश्रित कटुबचनों से तिरस्कार करके न बोलते? पिताजी ने बिचार नहीं किया, अबिचार से सर्व्वनाश कराया। पिताजी ने जो कहा है, वह कुछ नहीं है उनके जामाता योगीश्वर सिद्धेश्वर हैं, श्मशान में योग साधन करते हैं परमात्मा के ध्यान में लीन रहते हैं ऐश्वर्य्य को तुच्छ समझ कर, धन, और मान की इच्छा नहीं करते महानिधि के लाभ में व्यस्त रहते हैं। पिताजी ने ज्ञानी होकर भी उस उच्चभाव को नहीं समझा, यह क्या मुझे सामान्य दुख है? पिताजी सकल शास्त्रज्ञ होकर मेरे जीवनाधार पति की निन्दा मेरे समक्ष ही करें भला यह श्रवण करने के योग्य है? यदि भाग्यवशतः कन्या का विवाह वैसेही दरिद्र गृह में हो तौभी पिता को

उसे ऐसाही उपदेश देना चाहिये कि जिसमें वह अपने पति की सेवा में लीन रहे और उस पर आन्तरिक भक्ति बनी रहे, यदि वास्तविक में उनके जामाता में सब दोष भी रहते अथवा उन के देखने में निन्दित कर्म करते तोभी मेरे मुख पर उनकी निन्दा करनी उचित न थी, पिताजी को तो मुझे ऐसा ज्ञान उपदेश करना चाहिये कि यदि पति त्यागने के योग्य हो तोभी मेरी अटल भक्ति उनके श्रीचरणों में बनी रहे और मन में तनिक भी भेद न उत्पन्न होने पावे।

प्रसू०—सुन पुत्रि! जैसी तू हम लोगों की कन्या है वैसे ही शिव भी हम लोगों के सन्तान हैं, जैसे पुत्र के ऊपर क्रोध करके कहा जाता है, उसी भाँति महाराज ने सन्तानवात्सल्यही से यह बात कही है—

सती०—माता, यह वैसी बात नहीं है, यदि वही होती तो फिर मैं क्यों ऐसा कहती? यही तो मेरी प्रार्थना थी कि पिता जी उसी स्नेहभाव से बोलैं! उनकी बातों से न राग झलकता और न स्नेह, वरन अत्यन्त घृणा और विषम विद्वेष सूचित होता है।

प्रसू०—अरे नहीं बेटी! तेरा वेष भूषण देखकर—अरे वे पुरुष न हैं—

सती—वेष भूषण तो स्त्रियोंकी चेष्टा है मां,—ज्ञानी पुरुषों

की आन्तरिक इच्छा यही रहती है कि नीच प्रवृत्ति लुप्त हो और हम सब अपने २ भाग्य पर संतुष्ट रहैं।

दक्ष—हाँ हाँ, जान पड़ता है कि ज्ञानीपुरुष राजकन्याओं को दरिद्रवेष से पितृगृह जाने की सम्मति देते हैं। बेटी मुझ जले को फिर क्यों जलाती है।

सती—पिताजी, जब मैं बालिका थी तब आप मुझे अपने गोद में ले कर धर्मनीति उपदेश करते समय बार २ अपने श्रीमुख से यही कहा करते थे कि पति के घर जाकर सम्पत्ति और भूषण का ध्यान करना स्त्रियों की विपत्ति और लज्जा का कारण है उनके लिये अपने पति का केवल ध्यानही कल्याणकर और मंगल का निदान है। आपही ने उपदेश दिया था कि पति चाहै भिखारी, राजा, सुरूप, कुरूप, निरुज, सरुज कैसाही हो परन्तु स्त्रियों को मन कर्म और बचन से उसकी सेवा और उसके चरणों में प्रेम करना उचित है उसी को ब्रह्म जानना पतिव्रताको समुचित स्त्रियों के लिये वह ब्रह्मज्ञानरूप है। यदि स्त्री उस की सेवा भक्ति से तनिक भी विचलित हो तो वह यथार्थ सती नहीं है इस लोक में वह कभी सुख नहीं पा सकती और उसका परलोक भीनहीं सुधर सकता। यदि मैं यह भूल जाती तो आप मुझे पूर्व

कथित वचन स्मरण करा देते परन्तु यह तो हुआही नहीं उलटा मैंही. अपने ज्ञानी उपदेशक पिता को स्मरण करा रही हूं यह मेरे मन्दभाग का ही दोष है—नहीं तो और क्या कहूं? –हाय! कहां मैंने यह सोचा था कि पिता को प्रणाम कर के उन के एक ओर खड़ी होऊँगी और कैलास का वृतान्त पूछने पर मृदु स्वर से कहूंगी और फिर माताके पास भी जाऊँगी, परन्तु एक भी न हुआ, तहां आज लाज शील छोड़ कर गुरुजनों के समक्ष इतना व्यर्थ बकना पड़ा। हा! अब क्या इस घृणित व्यापारोपरान्त प्राण धारण कर सकती हूं? स्त्रियों को श्वशुरगृह में यदि दुख या ताप हो तो पिता के घर आकर सुखी और शीतल होती हैं। परन्तु मुझ अभागिनी को तो विधाता ने उस सुख से भी वञ्चित किया अब मैं कहां जांऊ, किसका आश्रय ग्रहण करूं।

प्रसू॰—मैं बलि जाँउ, वञ्चित क्यों किया? महाराज को तेरी कुदशा देख कर आन्तरिक-कष्ट हुआ अतएव वात्सल्यप्रेम में मुग्ध हो कर उन्हों ने इतना कहा है जिसे सुन कर तू व्यर्थ हाय! हाय! करती है।

सती—हा अदृष्ट!—कैलास में कष्ट, और मुझे—भला जिस कैलास में एक क्षुद्र जीव को भी पाप ताप

दुख और क्लेश नहीं व्यापता उसी कैलास में मुझे कष्ट ? मुझे धन के सुख से क्या प्रयोजन है माता ? मुझे जितना असीम सुख प्राप्त है उतना दूसरे को स्वप्न में भी मिलना सम्भव नहीं माता, तुमारी इस पुत्री को जैसा सुहावन स्थान मिला है वैसा रमणीय, मनोहर, शान्तिकर स्थान त्रिभुवन में नहीं है—भला उसके समक्ष इन्द्रालय और वैकुंठ की क्या गिनती है ? केवल पिता के वचनों से अपमानित और घृणित होने के कारण मैं अभागिनी हुई हूं नहीं तो तुमने उसे ऐसे सुपात्र के हस्त अर्पण किया है कि इस संसार में जन्म ले कर प्राणी को जितने सुख आनन्द की आवश्यकता है उस के यहां किसी का अभाव नहीं है, मैं उनके चरणरज के प्रसाद से देवियों की देवी और त्रिलोक जननी सी मान्या और गणनीया हुई हूं और इस त्रिभुवन में दाक्षायणी के नाम से जितना मेरा मान था उससे लक्षगुण प्रतिष्ठा भवानी और शिवानी के नाम से है, हाय ! मुझे इस संसार में सब कुछ मिला था और कितनी आशा थी, किन्तु आज सब मिट गई ।।

प्रसू॰—बलिजाउं ! मैं बलिजाउं ! सब पूर्ण होगी बेटी ! सब रहैगी और वृद्धि होगी—

सती॰—हा जन्मसखी जया, बिजया ! हा वत्सगण तुम सब कहां हो ? क्या तुम लोगों से एक बेर भी अब देखा देखी न होगी ? भला सखी और सन्तान भाव इस संसार में कहीं और भी है ? जिस पर बिधाता बाम है उसे सुख कैसे मिल सकता है ? हा अदृष्ट ! ऐसा कैलास—ऐसी सखी—ऐसा लीलाचल—अब कौन मुंह ले कर जाऊंगी—कैलासनाथ का इतना अपमान देखकर फिर उन्हें कैसे मुख दिखलाऊंगी ?

प्रसू॰—बेटी ! कैसा अपमान ? उन की बात मत सुन बेटी—उनके बात पर ध्यान मत दे ।

सती॰—माता ! मैं यही सोचकर तो आई थी कि उनकी बातों पर तनिक ध्यान न दूंगी, यज्ञ की चर्चा ज्योंही सुनी त्योंही उन्मत्त की भांति दौड़ी यहां चली आई, अनिमंत्रण को भी तुच्छ जानकर मैं आई । क्यों आई? यज्ञ में भोजन करने के लिये नहीं आई माता, अमंगलनिवारण की आशा से आई । पिता जी ने क्रोधवश अमंगल पर ध्यान नहीं दिया अतएव समझाने आई, मैंने समझा था कि यदि शतशः प्रकार का भी क्रोध किये होंगे तो भी रोदन और निवेदन करके उन्हें शान्त करूंगी और सर्वदिक की रक्षा करूंगी दो एक अपमान की बातें भी सहलूंगी

परन्तु एक भी नहीं हुआ । हाय ! इस अपमान सागर में निन्दा की प्रखरधारा बह रही है और धिक्कार रूप प्रचण्ड वायु के संसर्ग से घृणा की वीचि (लहर) उछल रही है भला ऐसे असीम अपार समुद्र के पार मेरा क्षुद्र प्राण कैसे जा सकता है माता अब मैं डूबी, मैं भली भांति समझ गई, कि मेरे भाग्य का शेष हो गया ! हाय ! मैं जिस अशुभ को मिटाने के लिये आई उसकी और वृद्धि हुई, क्या नाथवाक्य कभी अन्यथा हो सकता है ? महाज्ञानी ने तभी कहा था कि "तुमारे पिता अबोध हैं कुछ नहीं समझेंगे, उनका निर्दय हृदय कभी सदय नहीं हो सकता—सती, तुम अनल में पतंग होने मत जावो" हाय ! मैं वही पतंग हुई—

दक्ष—यह कैसा सर्व्वनाश है! कैसा इन्द्रजाल है! कैसी चमत्कार ऐन्द्रजालिक विद्या है? कैसी अद्भुत कपटमाया है। जो भूत और भविष्य में कभी सुनने में नहीं आई न जाने बला की कैसी नये प्रकार की नटविद्या है। बाजीगरी है, आश्चर्य्य—अति आश्चर्य है ! इसी के प्रभाव से उसने हमारी सती को अपने वश कर लिया है जिस सती के बाल्यावस्था की बुद्धि देखकर प्रवीण ऋषि, मुनिगण अवाक् हो जाते थे नहीं जान प-

हुता कि अब वह बुद्धि क्या होगई? नारद भाई वह तो बड़ा ऐन्द्रजालिक जान पड़ता है, यही उसका एक अकाट्य प्रमाण है। जब उसने हमें और तुम्हें मुग्ध कर लिया तो दूध की बालिका अज्ञान शिशु को अपने बश में कर लेना कौनसी बड़ी बात है। हाय मैं कैसा दुर्भाग्य हूं कि ऐसे ओझे को ऐसी कन्या रत्न अर्पण किया! जबलों किसी रोगी के सिर भूत चढ़ा रहता है तबलों वह अनाचार को आचार, अखाद्य को खाद्य, अकथ्य को कथ्य, जो जो जी में आता है बका करता है प्रलाप वाक्य उस के लिये सदालाप होता है! जिस कार्य का सिद्ध होना चेतन्य दशा में वह असम्भव जानता है उस समय उसका भी अनुष्ठान करने लगता है और उसके शरीर में असामान्य बल उत्पन्न हो जाता है परन्तु जब औषधि खिलाने या मंत्रों के प्रताप से सचेत हो जाता है तो उस समय मूर्छित होकर गिर पड़ता और अपने चारो ओर लोगों की भीड़ भाड़ देख कर महा विस्मित और लज्जित हो जाता है, सूमों के कथन की भांति पूर्वकृत चरित्र कुछ भी स्मरण नहीं रहता। दुर्भाग्यबश मेरे कनिष्टा कन्या की भी ठीक वही दशा उपस्थित हुई है भूतों का राजा भूत जो

शिव हैं, उसकी जैसी भौतिक माया है उसी के वश होकर मेरी सती भी प्रलाप वचन उच्चारण करती है मेरे जानमें ज्ञानरूपी चक्षुप्रदान के अतिरिक्त इस रोग के निवृत्ति का दूसरा यत्न और औषधि नहीं है।

नारद—यही तो—माता स्वयं महामाया हैं, तो भी शिव की माया में मुग्ध हो गई हैं।

दक्ष—अवश्य यही है, नहीं तो भाई यह कन्या नितान्त पितृवत्सला थी. कभी मेरे अपमानित बचनों पर ध्यान नहीं देती परन्तु आज मेरे मुख से पति की निन्दा सुन कर घोरतर अभिमान में मत्त हो गई है, इस को अलौकिक अपदैविक प्रभाव न कहें तो क्या कहें? राजकन्या, सो भी ऐसी वैसी नहीं राजा दक्ष की कन्या हो कर, ऐसी दरिद्र हो गई है कि दिन २ अन्नाभाव से दुर्बल, चिन्तानल से जीर्ण, यत्नाभाव से मलिन, गृहाभाव से बनवासी हो गई है, उसका देखना तो दूर रहे, भला यह तो देखो कि पर्वत पर निवास करने से पक्षपातिनी होगई है और अमानुषिक पिशाच काण्ड के प्रशंसा-वाद में प्रवृत्त हुई है! ये जो उसकी सब बहिन आई हैं उनकी तथा अपनी अवस्था और उनका और अपना अंग देखकर भी उसे ज्ञान नहीं होता। कन्या

को पतिभक्ति में रत रहने का उपदेश देना तो उचित ही है यह क्या मैं नहीं जानता ? परन्तु क्या भपदेव पति के भक्ति करने के लिये उपदेश दिया था ? यदि शास्त्र में सामान्य नियम हो तो क्या विशेष नियम द्वारा शासन नहीं किया जासकता ? क्या एक ही व्यवस्था सर्वत्र घटती है ? यदि पूर्वकाल में इसका कोई विशेष नियम नहीं था तो मैं आज से यह नियम स्थापित करदेता हूं कि यदि कोई व्यर्थ भ्रम वशत: अथवा किसी विशेष कारण से अपात्र विजातीय को कन्यादान दे तो वह साधारण दाम्पत्य नियम के शासनाधीन नहीं रहसक्ती वहपति से अबाध्य होने पर भी दोषी नहीं हो सकती है ।

मघा—यह नियम सुनने में तो कुत्सित है परन्तु पिताजी जो कहते हैं उसमें एक बात भी अन्याय नहीं; यद्यपि सती और हम लोग एकही माता पिता के सन्तान हैं परन्तु देखने पर यह विश्वास नहीं होता, (दक्ष के प्रति) पिताजी में उसका गुण और क्या वर्णन करूं, हम लोगों ने अपने २ शरीर का एक २ गहना उतार कर उसे पहिनने को दिया था।परन्तु इसने स्पर्श तक नहीं किया क्या इसमें उसकी कुछ प्रतिष्ठा घट जाती? उसको शिव जब देंगें तब पहनेगी । मेरे जान यदि

सूर्य्य पश्चिम भी उदय हो तो भी यह सम्भव नहीं है।

दच—मैं भली भांति जानता हूं, और मुझे निश्चय बोध हो गया है कि उस पिशाच के पास तमोगुण छोड़ कर दूसरा धन कुछ भी नहीं है। भला धन नहीं है तो न सही परन्तु नम्रता तो चाहिये, वह भी नहीं है इसपर इतना अभिमान। भला जिस में योग्यता ही नहीं फिर उसका तेजही क्या—यदि ऐसा मनुष्य अपना तेज प्रकाशित करना चाहे तो उसे पागल के अतिरिक्त और क्या कहेंगे?।

मधा०—शिव तो पागल हई हैं।

दच०—नहीं बेटी, दूसरे बातों में पागल नहीं है केवल अहंकारही में पागल है यदि उसे स्वाभाविक उन्माद भी होता तौ भी मैं अच्छा जानता तब तो मैं उसे कुछ भी नहीं कहता। अब मैं उसे मानव कहूं या यच कहूं क्या कहूं कोई बात मेरे मन में नहीं बैठती। मनुष्य का कोई भी लक्षण उसमें नहीं पाया जाता मनुष्यों में तो चार वर्ण और चार आश्रम होते हैं परन्तु इसका तो किसी से भी सम्पर्क नहीं है यदि ब्राह्मण होता तो चाण्डाल किरात आदि नीचजाति का दान और सेवा क्यों स्वीकार करता? चत्री होता तो तपस्वी के भेष में क्यों फिरता? वैश्य होता तो

यदि व्यवसाय वाणिज्य न करता तो कृषी कम तो करता ? इससे भी तो एक मुट्ठी अन्न खाने को घर में रहता ! और यदि शूद्र होता, तो द्विजसेवा करता, देश विदेश क्यों घूमा करता इसी से तो जान पड़ता है कि चारों वर्णों में से कोई भी वर्ण नहीं है फिर देखो चारों आश्रमों में से किसी में भी इसकी गिनती नहीं, क्योंकि यदि गृहस्थ होता तो श्मशान में क्यों घूमता ? यदि वानप्रस्थ होता तो भी कैलास में घर बनाता ! यदि सन्यासी होता तो हमारा सर्व्व नाश क्यों होता ? वह दरिद्री हमारी लक्ष्मी बेटी से क्यों विवाह करता ? । वह ब्रह्मचारी भी नहीं कहा जा सकता, भला कौन ब्रह्मचारी कुपात्रों को साथ लेकर घूमता और इतना अत्याचार करता हैं ? यदि कहें कि देव है तौभी इसमें अनेक भ्रम है क्योंकि यदि देवता रहता तो समुद्रमथन के समय वह कहां था ? अमृत बँटती समय तैंतीस कोटि देवताओं में से जिसमें नाम मात्र भी देवत्व का गंध था उन्होंने सुधाभाग पाया और उस भूतड़े के भाग में सरल सुधा के बदले गरल पान की व्यवस्था हुई। हाय हाय, यदि वही विष खा कर मर गया होता, तो इस समय ऐसा कष्ट उपस्थित न होता परन्तु

आश्चर्यमय व्यापार हो गया कि सुधा तो पाया नहीं विष खाकर भी नहीं मरा! विधाता की कुछ ऐसी अद्भुत रचना है कि कुछ भी समझ में नहीं आती! तात्पर्य यह कि वह देवता भी नहीं दानव भी नहीं मानव भी नहीं कुछ भी नहीं है! उसका वर्ण नहीं, जाति नहीं, कुल नहीं, शील नहीं, आश्रम नहीं; पिता माता भाई भग्नी ज्ञाति बंधू कोई नहीं है! उसको आचार बिचार, धर्माधर्म, कर्माकर्म, खाद्याखाद्य भला मन्द, कुछ भी नहीं है! भला जिस को और कुछ नहीं रहता, न सही परन्तु लज्जा, घृणा, मान अपमान का बोध तो रहता है; इसे तो वह भी नहीं है यदि यही होता तो क्या बिना निमंत्रण पाये इतना अपमानित होने पर भी अपनी अर्धाङ्गरूपिणी सहधर्म्मिणी को आज इस बेश से यहां भेजता? यदि सती बिधवा होकर आज इस भेष से मेरे घर आती तो मैं उस घटना को भी अतिशुभकर घटना समझ सुखी होता। ऐसा होने पर मेरा पूर्व्व स्नेह शतगुण अधिक होता और पितृस्नेह से समादरपालिता हो कर सती भी सुख से रहती। हा हन्त पिता होकर ऐसी अस्वा-भाविक अशुभ इच्छा करने से अन्तःकरण में जितना

असीम कष्ट हो रहा है इसको अन्तर्यामी गुरु देवही जानते होंगे।

प्रसू०—(उच्चस्वर से) महाराज यह क्या कहते हैं? हा निदारुण! हा निठुर! हा निर्दय पाषाण! क्या कहा? सर्व्वनाश किया! सन्तानहत्या और कन्याहत्या किया! यह क्या, अरे पुत्री का मुख देखो उसके नेत्र जवाफूल के समान अरुण हो गये हैं! ए पुत्री, क्या हो गया कि नेत्रों के पलक नहीं पड़ते! (सती को गोद में लेकर) बेटी, क्यों ऐसी हो गई? एकबार बोल बेटी—बेटी! तेरा ऐसा भाव तो कभी नहीं देखा था पुत्री! तेरे नेत्रों में जल भी नहीं है इससे और भी भय होता है, यदि दुःख हुआ तो रोदन क्यों नहीं करती! हा पुत्री तेरे अग्निमय निमिषहीन चक्षु देख कर तेरी माता अग्नि में भस्म हो कर मर जायगी! हाय ।यह क्या हुआ? भला तू तनिक भी सचेत नहीं होती। सती को मैं गोद में लिये हूं, ज्ञात नहीं होता कि यह पाषाणमयी मूर्त्ति होगई है, या क्या हो गया, यह तो कुछ समझ नहीं आता, अरी पद्मिनी देखरी देख -अरी मघा· जल क्यों नहीं लाती अरे सनका, पंखा क्यों नहीं झलती हाय! यह क्या सर्व्वनाश हुआ, मेरी पुत्री तनिक भी नहीं हिलती

एक बार ही स्थिर हो गई है नेत्रों के तारे भी नहीं चलते हाथ पांव भी नहीं फैलता—सब अवश हो गये हैं ?

(सब शुश्रुषा करती हैं)

हा पुत्री सती दुःखिनी का धन ! अन्धी की आंख—प्रसूती की जीवन ! नेत्र खोल पुत्री ! देख तो, बोल पुत्री ! (मुख पर जल प्रदान) तेरा चन्द्रानन अब मलिन नहीं देख सकती हूं !

नन्दी०—(हाथ में त्रिशूल उठा और दक्ष को देखा कर) हर, हर, हर, शंकर ।

दक्ष०—(अति उच्चस्वर से) कोई है—शिघ्र आओ !

नार०—(उद्यतत्रिशूल और दक्ष के मध्यम में प्रवेश पूर्व्वक) नन्दी क्षमा करो ! सती जीवित हैं !

(चारजन प्रतिहारी का प्रवेश ।)

प्रसू०—(चीत्कार स्वर से) अरी सती, सर्व्वनाश हुआ ! तेरी माता आज बिधवा हुई—नेत्र से देख पुत्री, नन्दी तेरे पिता का प्राण हरण करना चाहता है, पुत्री देख हाय ! त्रिशूल चलाता है ।

सती—(नेत्र खोलकर हस्त द्वारा नन्दी को निषध कर धीरे २ मधुर स्वर से) वत्स—शान्त हो—वे जो कहैं जो करैं—मेरे जन्म दाता हैं ! मत पुत्र मेरे साक्षात्

मेरे जीवित रहने तक कुछ मत बोल—मेरे मृत्यु की अपेक्षा कर !—मैं अब यह शरीर नहीं रक्खूंगी !—जनक होने से तुझे निवारण करती हूं नहीं तो चतुर्दश भुवन में किसकी शक्ति है कि मेरे शंकर का अपमान करे। जन्मदाता पिता अवध्य हैं; उनसे तो कुछ भी नहीं बोल सकती परन्तु ऐसे पिता से बने हुये जन्म और ऐसे मोहान्ध पिता से उत्पन्न शरीर को अब न रक्खूंगी अब अपने योगीश्वर के दीक्षित महा योग बल से इस जीवन को प्राणनाथ के चरण कमल में अर्पण करूंगी, जिससे यह शरीर उत्पन्न हुआ है मैं उसी के निकट इस पापमय देह को छोड़ कर जाऊंगी ! पुत्र नन्दी तब तक शान्ति स्वभाव बनाये रह मेरे मरने पर भी कुछ मत बोलना, कैलाश में जाकर कैलासनाथ को समाचार सुनाना—वे जगत हितार्थ—दर्पकारी के दर्पहरण के निमित्त जैसा उचित समझेंगे करेंगे ! नन्दी, तुम सभों से तुमारी अभागिनी माता आज बिदा होती है, कैलासनाथ के द्वेषी की कन्या भला कभी तुम लोगों की माता होसकती है ? जिसका पिता कैलासनाथ का मर्म्म नहीं जानता, क्या उसको कैलासेश्वरी होना शोभा देता है ? यह दो महागुरु जनों का झगड़ा हाय ! मैं कहां

खड़ी होऊं ? वे तो परस्पर त्याग भी कर सकते हैं, परन्तु मैं किसको त्याग करूं ? जिस पिता ने इतना अगौरव और इतना अनादर किया, इतना लांछन लगाया, उन्हें भी मैं नहीं त्याग सकी । अब ऐसे समय में किसको त्यागूं ? बस यही समुचित है कि अपने इस पापमय शरीरही को परित्याग करदूं। लोग मृत्यु के शंका से कातर होते हैं, मुझे तो उसका त-निक भी भय नहीं है परन्तु माया ने जैसे सब को अपने जाल में फँसा लिया है वैसेही मुझे भी अपने बश में करलिया मैं कर्तव्य को प्राण से भी श्रेष्ट जानती थी, आज उसी कर्तव्य के अनुरोध से प्राण वायु को शरीर से पृथक् करना चाहती हूं किन्तु केवल मोहकारिणी माया के कारण यह प्राण प्रयाण नहीं करता, कुछ काल के लिये ठहरा हुआ है, मेरी माता मेरे बिरह शोकानल में दग्ध हो जावे-गी ! और मेरे प्राणेश्वर को इस अभागिनी के बिरह से महापरिताप होगा, मेरे चन्द्रचूड़ को समस्त जगत अंधेरा जान पड़ेगा केवल यही दोनों चिन्ता मुझे मृत्युयातना से भी अधिक प्रबल जान पड़ती हैं परन्तु क्या करूं ? पिताजी का घृणारूपी विष सर्व्वांग में फैल गया है। पतिनिन्दा के बज्राग्नि से

हृदय दग्ध होगया है ! (दक्षराजा के प्रति हाथ जोड़ कर) दाम्भिक महाराज ! बिदा दीजिये, मेरी रसना तुम्हें पिता कहना नहीं चाहती तुम से अब लेश मात्र सम्बन्ध रखने की इच्छा नहीं है । अभी तुमारा सब दुख छूट जाता है मुझे फिर विधवा वा सधवा की अवस्था में तुम्हें देखने की आवश्यकता न रहेगी ! अब फिरमुझे पुत्रीभ्रष्ट से अह्वान करना भी न पड़ेगा जिस कन्या के कारण तुमारा मान और सुख नष्ट हो गया, सब कुछ व्यर्थ हुआ इतनी ज्वाला बढ़ीउस कुलक्षणा कन्या के हेतु फिर तुम्हें ताप न सहना पड़ेगा ! वह अभद्रा कन्या स्वयम् अन्तर्ध्यान होती है जन्मभर के लिये बिदा होकर जाती है ! केवल यही भिक्षा है कि इसे बालिका तनया समझ कर इसका दोष अपराध क्षमा करो और यदि सम्भव हो तो अब भी अपने मंगल के निमित्त उस मंगलमय कैलासनाथ का मान रखो ! नहीं तो जिस मुख से उनकी निन्दा की है, वह मुख फिर न रहैगा, निश्चय पशु-मुख होजावेगा (योगासन से ऊपर नेत्र कर क्षण मात्र मौन धारण पूर्वक)हाप्राणनाथ ! हा कैलासनाथ हा त्रिलोकनाथ ! हा सतीनाथ ! तुम कहां हो ? इस समय श्रीचरणकमल का दरशन मुझे क्यों नहीं

देते ? हृदय आकाश में उदय हो—जिसमें इस समय हृदयशून्य न हो अब एक बेर सहायता करो—जिस मूर्त्ति से त्रिलोक संहार करते हो, इस क्षण उसी मूर्ति का दर्शन दो—जिस संहारकमूर्ति के नाम से जगत कंम्पित होता है, दासी उसी का आवाहन करती है—शीघ्र दर्शन दो—जिस मूर्त्ति से जीवों का पाप ताप हरण करते हो, उसी मूर्त्ति का दर्शन दो यह दासी घोर पाप की पापिनी हुई है। प्रभो मैंने पतिवाक्य लंघन करके असती का कर्म्म किया अब उस पाप का प्रायश्चित करूंगी, पतिनिन्दा को कर्ण में स्थान दिया है उसी पाप का प्रायश्चित करूंगी; जो पिता नाथनिन्दा में प्रमत्त हैं, उनसे उत्पन्न हुए शरीर को रखना समुचित नहीं है और जिसमें उन्हें फिर पिता न कहना पड़े इसका उपाय करूंगी, तुमसे जो प्रतिज्ञा करके आई हूं उस का पालन करूंगी; मैं जो यह कहके आई हूं कि उद्योग निष्फल होने पर पुनः कैलास में न आऊंगी, सो क्या कभी भूलसकती हूं? प्राण परित्याग से इतना ही प्रयोजन है। उस प्रयोजन के साधन का समय उपस्थित है। इस समय हे नाथ!—निर्दय मत होइये इस समय मेरा हृदय शून्य मत करिये इस समय वि-

अम्बर रूप न देखने के कारण मनः संताप पर और भी संताप भोग करके यह प्राणपक्षी कहीं पदपादप से उड़ न जावे—सद्यः मोक्षदाता काशीश्वर के प्रेयसी की अपमृत्यु न होने पावे। हा प्राणेश्वर! हा नाथ! हा मृतुञ्जय! इस हृदय रूपी आसन पर विराजिये (उठकर) मृत्युराज! शीघ्र आओ!—मृत्युंजय की पत्नी तुम्हें पुकारती है यदि उस नाम से भय होता हो तो मेरे आत्मा पर अधिकार न करके केवल शरीर नाश कर आत्मा को पृथक् कर दो (कम्प पूर्वक) वत्स पवन! तुमने विजया से कहला भेजा था कि पथ चलने में सहायता करूंगा, उस समय सहायता की कुछ आवश्यकता न थी परन्तु अब प्रयोजन है इसक्षण सहायता करो, अब वायुरोध करो, अबशीघ्र अन्तर्धान हो—हृदय से निकल जाओ—प्राणवायु को देहाधार से शीघ्र हटा दो—उसको साथ लेकर महाकाश में प्रलीन हो जाओ,—आत्मा को शरीर से पृथक करो।

प्रसू०—(चीत्कार पूर्व्वक) अरी अश्विनी सर्व्वनाश हुआ, देख तो क्या है? हाय! सर्व्वनाश हुआ—धर, धर शीघ्र धर!

सती०—हा नाथ! हा प्राणेश! हा—

(पटाक्षेप) [पतन और मृत्यु।

—***—

हरपार्वती सम्मिलन ।

(सतीनाटक के अतिरिक्त एक अंक)

स्थान—कैलासपर्वत ।

(शिव और पार्वती बैठे हैं—नन्दी दूर खड़ा है ।)

पर्वत पर नारद और शान्तिराम का प्रवेश ।

नार०—शान्तिराम क्या कहते थे ? क्या कैलास में चलने की तुमारी इच्छा नहीं है ? सो क्यों ? जिस कैलास बास के लिये तुमने हमारा संग भी छोड़ दिया था उस कैलास से तुमको अरुचि ? बड़े आश्चर्य की बात है !

शान्ति०—व्यर्थहिं या कैलास में अरुचि हमारी नांहि,
बिनुमाता को और है अब यहि पर्वत मांहि ।
पिता संग अनमनी ह्वै माता त्याग्यो प्रान ।
तेहि दिनते या शांति को फिर कैलास न जान ॥

ना०—नारायण, नारायण ! इसी से तो प्रगट होता है कि तुम सब संबाद जानते हो ! माता फिर कैलास में आई है क्या इसको शान्तिराम तुम नहीं जानते ?

शान्ति०—(नारद के सम्मुख हाथ जोड़ कर)
मैं जानौं गुरुबचन को सदा बेद सम सांच ।
तब काहे ऐसे कही आते लागत आंच ॥

ना०—नहीं शान्तिराम, मैं मिथ्या नहीं कहता—सत्य कहता हूं माता फिर आई हैं।

शान्ति०—(नारद का मुख क्षणपर्यन्त देख कर निज कर्ण के प्रति अंगुली निर्देशपूर्वक)

मैं निज श्रवनन ते सुन्यौं पितु सन बोली मात।
"यहि शरीर तव दत्त को अब नहि राखहुं तात"
(पुनः निज चक्षू के प्रति अंगुलीनिर्देशपूर्वक)
इन आंखिन के देखते माता तज्यो शरीर।
इन आंखिन में सर्बदा भरे रहत हैं नीर॥
इन्हीं पगन ते शोक मै बन २ फिरयौं अकाम।
मन में ठहरायों यही अब न जांउ केहि ठाम॥
झरना जल बन फल रह्यो सदा सुखद तेहि काल।
भवन गुहा शय्या अवनि और न कछु भौजाल॥
जो गुरु आज्ञा मानि कै मैं आयों तुम साथ।
तो कत बोलत व्यङ्ग हो अस न चाहिए नाथ॥
माता के शोकाग्नि ते जरत सदा मम गात।
तापर तुम बकवाद ते लोन लगावत जात॥

ना०—नहीं, शान्तिराम, तुमको भुलवाते नहीं—माता के जाने से क्या फिर माता नहीं होती ?

शान्ति०—समुझौं प्रभु तुमरी चतुराई।
माता नहीं बिमाता आई॥

शिवशंकर पुनि कीन्ह बिवाहू।
तेहि देखन तुम जात सचाहू॥
वह तो है है सनमुख नाहीं।
माता कहि बोलब केहि पाहीं?
हौ हौ नाथ कछुक ना खाउब।
लाख बरिस कैलास न जाउब॥
(प्रस्थानोद्यत)

ना०—हूँ हूँ जाव मत, जाव मत, सुनो सुनो—वही माता फिर आई हैं—माता ने जो एक बार देह त्याग किया है तो क्या फिर देह धारण नहीं कर सकतीं? शान्तिराम तुम ऐसे बुद्धिमान होकर इतना नहीं समझ सके? बाबा पंचानन क्या और किसी से विवाह करते हैं? माता ने दक्षदत्त देह त्याग कर पुण्यात्मा हिमाचल के गृह जन्म लियाथा—फिर भी हमने मध्यस्थ हो कर शिवशंकर के संग माता का विवाह करा दिया है—फिर वही माता उसी भांति जया, विजया, को साथ लेकर उसी कैलासपुरी में वैसही दीप्तमान हो बिराज रही हैं?

शान्ति—तब क्यों नाथ बिवाह में कियो अनादर मोहि।
ऐसे अवसर त्यागनों अस न चाहिए तोहि॥

ना०—यह तो हमसे निस्सन्देह अपराध हुआ, किन्तु

बिवाह समय बड़ा गड़बड़ था इसी से तुमको संग नहीं लेगया, मैंने बिचार किया कि जब माता फिर कैलासेश्वरी हो कर सुशोभित होवेंगी तो उस समय एकबारही तुमें संग लेकर चलूंगा—इसी से तुम्हें ले आया हूं।

शान्ति०—जाग्रत में वा स्वप्न में सुनौं प्रभू की बैन।
चरण कमल फिर मातु के साचहुं देखिहैं नैन?

ना०—हां शान्तिराम, सत्य कहता हूं, फिर उसी माता के वेही चरण कमल देखोगे।

शान्ति०—(नृत्य पूर्वक)—

देखब अब मातहिं भरि नैना।
सुनब श्रवन ते सुखद सुबैना॥
सुफल भयो मम काज आज सब।
मरण हरण ते अभय भयहुं अब॥
हाथो धन पायौं मैं आजू।
सहजहिं सिद्ध भयो सब काजू॥
रे मन मूढ़ सुनहु चित लाई।
गुरु मिथ्या नहि बोलहिं भाई॥
अत बड़ ताप तप्यौं दिन राती।
दर्शन पाय जुड़ाउब छाती॥

ना०—धैर्य धरो शान्तिराम, पहिले माता के चरण कमल का दर्शन कर लो, तदनन्तर आमोद आह्लाद करो।

शान्ति०—जौं माता पुनि अवतरीं तब कैसो भय ताप ।
मिथ्या होहि न गुरुवचन जानहुँ वाक्यप्रताप ॥
अब भाषहु प्रभु कृपा करि पूछत हौं इक बात ।
अबहूं है मूरति वही के कछु भिन्न लखात ?
तब तो दक्षसुता रहीं जानत सब संसार ।
अब हिमगिरिकन्या भईं तबौ सोई आकार ?

ना०—(सहास्य) चलने ही पर देखोगी—आओ इसी पथ से चल कर दर्शन करें। (दोनों का प्रस्थान)

सती—(शिव के प्रति) नारद और शान्तिराम आते हैं—मैं उन लोगों को दूर ही से देखती हूं—आहा ! शान्तिराम को देख कर पूर्व की सकल कथा स्मरण होती है, अकस्मात् शान्तिराम ने कितना दुःख पाया उसको मैं अपने मनमें भली प्रकार समझती हूं।

शिव—प्रिये !, तुमारा कौन ऐसा भक्त है जिसने दुःख नहीं पाया ? एक शान्तिराम ही क्यों ? शान्तिराम तो अमर नहीं है,वरन वह बूझता था कि मरने के पश्चात् इस यन्त्रणा से मुक्त हो जाऊँगा। किन्तु तुमारे अमर भक्तों को तो ऐसा भी प्रबोध न था ।

सती—(सहास्य) क्यों नाथ ! शांतिराम तो बाह्यज्ञानावरोध की युक्ति न जानता था, अतएव किसी प्रकार से उस को भूले रहने का उपाय भी न था परन्तु

योगियों को तो शोक का नाश करना सहज है— और यह भी तो मैंने अपनी आंखों से देखा कि बहुत काल तक जिसकी तपस्या और सेवा करने में प्राण पर्यन्त दे दिया वेभी ऐसे भोले होगये कि लेश मात्र भी नेत्र खोल कर न देखा। भाग्यवशतः देवताओं ने किसी प्रयोजन से मदन को जब भेजा तो वही इस दुःखिनी के दुःख निवारण का एक मात्र अवलम्ब हुआ।

शिव—भलामैं नेत्र खोलकर कैसे देखता, मेरे हृदय मंदिर में तुमने अहर्निशि सुशोभित हो कर मुझे इतना व्यस्त कर रक्खा था कि जिस्से चक्षु खोलकर वाह्य जगत देखने का लेशमात्र भी चित्त न करता था। तुमने इस वृद्ध की दया पर तनिक भी ध्यान न दिया, कठोर हो दक्षपुर में शरीर त्याग कर चली गई तब वही शरीर मेरा अवलम्ब था—मैं उसे मस्तक पर ले कर पागल के समान सदा घूमता फिरता था! जब हमारे अज्ञातसार में चक्रपाणि ने चक्र से खण्ड २ कर इक्कावन स्थान में तुमारा अंग प्रत्यंग निक्षेप कर दिया, तब मस्तक शून्य देख कर फिर क्या करता महायोग में बैठ हृदय में वही रूप धारण कर मैं समय व्यतीत करता था तौभी मैंने वह अंग प्रत्यंग

नहीं छोड़ा—मैं उसी इक्कावन स्थान में भैरव रूप हो कर तुमारि इक्कावनों अंग की सेवा में चिरकाल लों नियुक्त हूं ।

(नारद और शांतिराम का प्रवेश और प्रणाम करना)

नारद—क्यों शांतिराम! क्या माता की मूर्त्ति कुछ भिन्न देखते हो ?

शांति०—याही अचरज मोहिं, यह माया कैसी विषम ।
प्रथम जन्म जस ओहि, देखेहु पुनि काया वही ॥
वही मातु वहि ठौर, मूरति वही बिराजती ।
ताहि कहै को और, कैसे वह माता नहीं ॥

(निज वक्ष में कराघात पूर्व्वक)

जौं पहिचानसि मात, अरे भ्रान्ति क्यों भ्रम करै ।
अबौं न शंका जात, देखि बहुरि मूरति वही ॥
जानि पस्यो निश्चै यही, पाय पापमय अंग ।
मिटै न भ्रम बिनु हरि कृपा, कोटि करौ सतसंग ।
चलत सदा ब्रह्मांड है जेहि माया मद मांति ।
सो मूरति बदलै भला मातु पिता केहि भाँति ॥
वीणा में जेहि गावते गुरु कहिके नित नित्य ।
अरे मूढ़ मन भ्रम करै ताको जानि अनित्य ॥

(निज कर्णमर्दन पूर्व्वक)

आज मलत हौं कान, अब सचेत ह्वै रहु सदा ।
नहीं तो जमपुर जान, ह्वै है फिर करिहै जो भ्रम ।

सती०—शांतिराम ! बहुत दिनों पर तुमारा मुख देखा, क्या कुशलानन्द से तो रहे ?

शांति०—बिनु माता बालक सुखी रहि न सकत केहु ठाम।
तज आज लों जिअत हौं लेले तुमरो नाम ॥
जब २ सुधि आई हृदय बढ़त रही अति पीर।
तब २ हाहा कर उठत करत यही तदवीर।
पीवत गांजा भाँग तब नशा होय घनघोर।
रह्यों पुकारत तोंहि तब बारम्बार निहोर ॥
तब तुरतै तो गोद में बैठत रह्यों स्वछंन्द।
किंतु नशा के जात ही रहत न वह आनन्द ॥
याही ते बन २ फिर्‌यो निसुदिन गांजा खोज।
नहि पाओं तब रोय उठों आंख मूंदि के रोज ॥
नैन मूंद ऊपर करौं तोंहि प्रणाम पुकारि।
तुरत होय दरशन तज तेरो हृदय मँझारि ॥

(वक्ष में कराघात औ नृत्य)

यामें कछु सन्देह नहि सत्य कहौं तोहि पांहि।
दिव्य दृष्टि ते देखि लै तू मम हृदये मांहि ॥

सती०—(सजलनयन) शांतिराम, तुझे कुछ देने की इच्छा होती है—क्या चाहता है वत्स बोल ?

शांति०—और कछू चाहौं नहीं ऋद्धिसिद्धिसंपति मान।
दुख न सहौं तव बिनु कबौं देहु यही बरदान।

हम सब को अब त्यागि कै और कहूं मति जाव ॥
तुम बिनु रोयों बहुत दिन अब मति मातु गोआव ॥

सती०—(सहास्य) नहीं पुत्र, अब तुम लोगों को छोड़ कर कहीं नहीं जाऊँगी !

शिव०—नहीं नहीं ! यह बात नहीं होगी—शांतिराम ने अच्छी बात स्मरण कराई है - अब हम तुमारी दूसरी बात नहीं सुना चाहते—अब एक प्रतिभू हो जाना चाहिये !

सती०—प्रतिभू क्या प्रभू ?

शिव०—अब दूसरी देह नहीं रक्खेंगे—आओ, अर्द्धांग भाव से दोनों व्यक्ति एक हो जावें !

सती०—तुमारी जो इच्छा !

शांति०—(नृत्यपूर्व्वक)

बहुत ठीक बाबा कह्यो यही होन के योग ।
पिता संग गँथि जान में मिटै सदा को रोग ॥
खांड़ छीरके मिलन सों होत मिठाई बेश ।
फिर दोउ बिलगैं नहीं ऐसोइ होय विशेष ॥
हरदी चूना के मिलत अद्भुत होवे रंग ।
तैसेही नहि छाड़िहैं मातु पिता को संग ॥
पिताअंग के वृक्षपर मातु लता हरियाहु ।
सागर जल में नदी जस तैसेही मिलि जाहु ॥

जो तुम माता ऐसे रहिहो ।

तो फिर जाने को कस कहिहो ॥

(गाल और कांख बजाकर नाचता है)

(किन्नरों का प्रवेश और गान ।)

(आकाश से पुष्पवृष्टि)

(रागिनी बहार ताल धमार)

शोभित कैलास अनुक्त साज ।

राजित हर गौरी युक्त आज ॥

जनु कनक रजत मिलि एक संग ।

मृगमद विभूति अध आध अंग ॥

एक ओर सर्प एक मँणि कङ्कन ।

अध बाघम्बर अध स्वच्छ बसन ॥

अर्धांगरूप जस छांह धूप ।

छबि युगल माधुरी है अनूप ॥

आधे सिर जूटजटा राजे ।

आधे सिर केस असित साजे ॥

एक ओर उदित है चन्द्रभाल ।

एक ओर विराजत विन्दु लाल ॥

सो करहिं जगत को हितबिधान ।

जाते है मङ्गल सुख प्रधान ॥

(पुष्पवृष्टि और बाजे की ध्वनि के साथ जवनिका गिरती है)

समाप्तम् ।